IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 5, Issue 1, July 2025
Impact Factor: 7.67

सांख्य दर्शन में सत्कार्यवाद

डॉ. मनीष प्रसाद गौतम

रीवा (म.प्र.)

सांख्यकारिकाकार ने सत्यकार्यवाद को सिद्ध करने के लिये निम्न हेतु दिये हैं–

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसंभवाभावात्।

शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्चसत्कार्यम्।।

अर्थात्–कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व या कारण के कार्योत्पत्ति के अनुकूल व्यापार के पूर्व भी विद्यमान रहता है क्योंकि–

1. असद करणात

जो सत् अर्थात् किसी न किसी रूप में कहीं विद्यमान नहीं है उसे उत्पन्न नहीं किया जा सकता। जगत् में कोई भी वस्तु सर्वथा नवीन उत्पन्न नहीं होती। क्योंकि अभाव का भाव कथमपि नहीं हो सकता। कहा भी है–**नासतो विद्यते भावः।** यदि अभाव से ही भाव की उत्पत्ति होने लगे तो अभाव के सर्वत्र सुलभ होने से सभी वस्तुओं की उत्पत्ति सर्वत्र स्वतः होनी चाहिये जो कदापि नहीं होती। अथवा जो वस्तु जिनमें विद्यमान नहीं है उससे उसकी उत्पत्ति मानने पर किसी भी वस्तु से किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति हो सकती है, पर होती है नहीं है। यदि यह कहें कि सत् एवं असत् दोनों ही वस्तु के धर्म है जो बारी–बारी से उसमे रहते हैं तो यह बात इसलिये सही नहीं हो सकती कि असत् अवस्था में जब वस्तु ही नहीं रहती तो उसमें उसके धर्म के विद्यमान होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है। पेरने से तिल से तेल, कूटने से धान से चावल तथा दुहने से गाय के दूध निकलता है, जो इस बात का प्रमाण है कि तेल, चावल और दूध निकलने के पहले से ही तिल, धान एवं गाय में विद्यमान थे। इससे यही सिद्ध होता है कि कार्य वस्तु अपनी उत्पत्ति के पूर्व भी अपने कारण वस्तु में विद्यमान थी, कारण के कार्योत्पादक व्यापार के अनन्तर वह व्यक्त हो गई। सांख्य सूत्र में इसका दृष्टान्त देते हुये कहा है, कि जिस प्रकार मनुष्य के सींग नहीं है, अतएव वह निकलती भी नहीं। गाय, बैल आदि जिसमें वह पूर्वतः विद्यमान होती है उसी को निकलती है।[1]

यद्यपि बीज और मृत्तिका–पिण्ड आदि के नष्ट हो जाने पर ही उनसे क्रमशः अङ्कुर और घट आदि की उत्पत्ति देखी जाती है तथापि बीज आदि का ध्वंस (विनाश) अङ्कुर आदि की उत्पत्ति का कारण नहीं है, अपितु बीजादि के भाव–रूप अवयव ही कारण है, पर यदि अभाव से भाव की उत्पत्ति मानी जाये तो (बीजादि के) अभाव के सर्वत्र होने से (अभावों के विशेष न रहने से) सर्वत्र सभी कार्यों के उत्पन्न होने का दोष आ जायगा। जगत–प्रपञ्च की प्रतीति मिथ्या हैकृ ऐसा उस प्रतीति के किसी बाधक (अर्थात् पूर्ववर्ती मिथ्याज्ञान का बाधक उत्तरवर्ती सत्यज्ञान) के उपस्थित किये बिना नहीं कहा जा सकता है।

इस प्रकार पूर्वोक्त दोनों मतों– बौद्धमत और अद्वैतवेदान्तमत का निराकरण हो जाने पर। यायवैशेषिक मत अवशिष्ट रहता है। इस मत का खण्डन करने के लिये कारिकाकार प्रतिज्ञा करते 'कार्य सत हैं' और इस कथन के समर्थन में (प्रथम) हेतु देते हैं– 'असत् के अकरण से।' अर्थात् यदि कारण व्यापार के पूर्व कार्य असत् (अविद्यमान) होता तो है उस कार्य को कोई भी सत् (विद्यमान) नहीं बना सकता। नील रंग को हजारों शिल्पी पीला नहीं कर सकते हैं। यदि यह कहा जाय (नैय्यायिक के द्वारा) कि एक ही घट (कारण व्यापार के पूर्व) 'असत' और (कारण व्यापार के बाद) 'सत्' हो सकता है (अर्थात् सत्ता और असत्ता दोनों ही घट के धर्म हैं) तो ऐसा कहना युक्त नहीं है, क्योंकि (उत्पत्ति के पूर्व) धर्मी घट के अविद्यमान रहने पर असतत्त्व रूप धर्म उसमें

DOI: 10.48175/IJARSCT-28454

(आधेय रूप से) कैसे रह सकेगा? इसलिये कारण व्यापार से पूर्व भी घट रूप कार्य सत् ही रहता है असत् नहीं। जिस 'असत्त्व धर्म का 'धर्मी' घट से कोई सम्बन्ध नहीं है। (धर्मधर्मिभेद पक्ष में) और न वह धर्म–धर्मिरूप ही है (धर्मधर्मि अभेद–पक्ष में) उसका आश्रयण कर घट को असत् कैसे कहा जा सकता है? (धर्मत्व वृत्तिमतत्व, जो किसी आश्रय में रहता है, वह धर्म है)। इसलिये जिस प्रकार कारण–व्यापार (उत्पादन) के अनन्तर कार्य सत् होता है, उसी प्रकार उसके पूर्व भी कार्य सत् होता है। इस प्रकार सत् कार्य का उसके कारण से केवल अभिव्यक्त होना ही शेष रहता है (अर्थात् अभिव्यक्ति को ही उत्पत्ति के रूप में निश्चित किया जाता है)। सत् की अभिव्यक्ति प्रमाण से सिद्ध है। जैसे, तिलों के पीडन (पेरे जाने) से उनमें पहले से ही विद्यमान तेल अभिव्यक्त होता है, धान के कूटे जाने से (उनमें विद्यमान चावल अभिव्यक्त होता है तथा गायों के दुहने से दूध अभिव्यक्त (प्रकट) हो जाता है। परन्तु असत् (अविद्यमान) वस्तु के उत्पन्न होने में कोई दृष्टान्त नहीं है। वस्तुतः असत् वस्तु कभी अभिव्यक्त या उत्पन्न होती हुई नहीं देखी गई।

2. उपादानग्रहणात

कारणव्यापार होने से पूर्व कार्य 'उपादानग्रहण' भी है। उपादान का अर्थ है– कारण (समवायिकारण–न्यायानुसार) और 'ग्रहण' का अर्थ है–कार्य के साथ उसका सम्बन्ध, इस प्रकार 'उपादान–ग्रहण' पद का अर्थ है– कार्य के साथ कारण का सम्बन्ध। इस विषय में यह कहा जाता है, कि कार्य के साथ नियत सम्बन्धयुक्त कारण ही कार्य को उत्पन्न करता है (सांख्य–दृष्टि में कहना होगा–संस्थान विशेष का अभिव्यञ्जक होता है) यदि कार्य असत् है, तो कारण के साथ उसका कोई सम्बन्ध होना असम्भव है। इसलिये (कारण–व्यापार से पूर्व भी) कार्य सत् होगा।

जब भी किसी कार्य को हम करना चाहते हैं तो उसके उपादान–कारण का ग्रहण करते हैं उपादान वहीं वस्तु है जिसमें कार्य समवाय सम्बन्ध से रहता है। अर्थात् कार्य जिसमें पूर्वतः विद्यमान होता है उसी को उस कार्य का उपादान–कारण कहते हैं। अर्थात् समवाय सम्बन्ध से कार्य अपने उपादान से सम्बन्धित रहता है। कार्य की असद् अवस्था में उपादान के साथ उसका सम्बन्ध कैसे बन सकता है। क्योंकि सम्बन्ध सर्वदा उभयाश्रित होता हैं जब तक कारण के साथ कार्य की समकालीन सत्ता नहीं मानेंगे तब तक उनमें सम्बन्ध बन नहीं सकता। घड़ा का उपादान मिट्टी है। उसमें घड़ा पहिले ही सूक्ष्म रूप से विद्यमान है, तभी घड़ा बनाने के लिये कुम्हार मिट्टी ही ले आता है। यदि यह कहा जाय, कि कारणों से बिना किसी सम्बन्ध के ही कार्य की उत्पत्ति व्यवस्थित हो सकती है तो उससे जो गड़बड़ी होगी उसके निरूपणार्थ अगली युक्ति देते हैं।

3. सर्वसंभवाभावात

कारण से असम्बद्ध कार्य क्यों उत्पन्न नहीं होता और ऐसा मान लेने पर यह सिद्ध हो जायेगा कि असत् (कार्य) ही उत्पन्न होता है। सम्बन्ध के अनुरोध से कार्य को कारण में विद्यमान मानने की आवश्यकता नहीं है। उसके उत्तर में कहते हैं– सभी कार्यों की उत्पत्ति सभी कारणों से न होने के कारण। तात्पर्य यह है कि (कारण में) असम्बद्ध कार्य की उत्पत्ति मान लेने पर 'असम्बद्धता के सर्वत्र समान रूप से प्राप्त होने के कारण सभी कार्य सभी कारणों से उत्पन्न होने लगेंगे, पर ऐसा नहीं होता है। अतः (यह मानना पड़ता है कि) असम्बद्ध कार्य असम्बद्ध कारण से उत्पन्न नहीं होता; बल्कि सम्बद्ध कार्य ही सम्बद्ध कारण से उत्पन्न होता है।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 5, Issue 1, July 2025 Impact Factor: 7.67

इस विषय में सांख्य के पूर्वाचार्यों ने कहा है—'उत्पत्ति से पूर्व कार्य को असत् मानने पर सत्तावान् (विद्यमान) कारणों के साथ उस कार्य का सम्बन्ध नहीं हो सकता और कारण से असम्बद्ध कार्य की उत्पत्ति होती है— ऐसा मानने पर कोई व्यवस्था नहीं होती, अर्थात् 'अमुक' कारण से ही अमुक कार्य की उत्पत्ति होती है— ऐसा निर्धारण नहीं किया जा सकता।

4. शक्तस्य शक्यकारणात

इस युक्ति के ठीक होने पर भी ऐसा तो कहा ही जा सकता है कि असम्बद्ध होकर भी कोई कारण उसी कार्य को उत्पन्न कर सकता है जिस कार्य में उसकी शक्ति हो (सभी कार्यों को भले ही वह उत्पन्न न करे), कारण में ऐसी कोई शक्ति है— यह कार्य को देखकर अनुमित होता है (मृत्तिका से घट की उत्पत्ति देखकर यह अनुमित होता है कि घटानुकूल शक्ति मिट्टी में है, तन्तु में यह शक्ति नहीं है) अतः कोई अव्यवस्था नहीं होगी। (शक्ति फल से अनुमेय होती है, अतः जिस कारण से जिस कार्य की उत्पत्ति नहीं देखी जाती उस कार्य के जनन में उस कारण की शक्ति नहीं है— ऐसा कहा जायगा, अतः कोई अव्यवस्था नहीं होगी)। इसके समाधान में कहते हैं, जो कारण जिस कार्य की उत्पत्ति में कार्यजननानुकूलशक्ति से युक्त है, उस शक्त कारण से उसी शक्य (अर्थात् उत्पाद्य कार्य) के उत्पन्न होने से कारण और कार्य परस्पर असम्बद्ध नहीं हो सकते और असम्बद्ध न होने पर कार्य का सत् होना अनिवार्य है।

प्रश्न यह है कि शक्त (कार्यजननशक्तिमान) कारण में आश्रित यह शक्ति सभी कार्यों के उत्पादन में प्रवृत्त (कार्यजननानुकूल) होती है या केवल उसके द्वारा शक्य (उत्पाद्य) कार्य में ही प्रवृत्त होती है? यदि सभी कार्यों के विषय में प्रवृत्त हो, तब तो (उपर्युक्त) अव्यवस्था ज्यों कि त्यों बनी रहेगी और यदि (निरूपता–सम्बन्ध से उत्पाद्य कार्य–विशेष) के विषय में ही शक्ति हो तो शक्य (शक्ति का विषय–कार्य) में अविद्यमान होने पर उस (कार्य) के विषय में ही कारण की शक्ति (कारणशक्तिगत विशेष) प्रवृत्त होती हैं, यह वैसे कहा जा सकता है? (स्वपक्षस्थापन के लिये) यदि यह कहा जाये कि कारण में इस प्रकार की शक्ति होती है कि वह विशेष को ही उत्पन्न करती है, सभी कार्यों को नहीं तो ऐसा कहना भी व्यर्थ है, क्योंकि तब दुःख के साथ प्रश्न करना पड़ेगा कि यह विशिष्ट शक्ति कार्य विशेष से सम्बद्ध है या नहीं? यदि सम्बद्ध है, तो असत् कार्य से उसका सम्बन्ध नहीं होगा, इसलिये कार्य को सत् कहना होगा। यदि कार्य सम्बद्ध नहीं है, तो उपर्युक्त अव्यवस्था (अर्थात् सर्वत्र सर्वकार्योत्पत्ति) बनी रहेगी, अतः कारिकाकार ने कार्य को सत् सिद्ध करने के लिये जो 'शक्तस्यशक्यकरणात्' कहा है, वह ठीक ही है।

5. कारणभावात

सत्कार्यवाद की सिद्धि के लिये एक अन्य हेतु भी देते हैं—कार्य के कारण से अभिन्न होने के कारण। कार्य कारण भिन्न होता और कारण चूँकि सत् है इसलिये उससे अभिन्न कार्य असत् कैसे होगा? (सत् से अभिन्न पदार्थ सत् ही होगा)। कारण से कार्य का अभेद सिद्ध करने वाले प्रमाण ये हैं—

का धर्म पट (वस्त्ररूप कार्य) वस्तु समूह रूप कारण से भिन्न नहीं है, क्योंकि वह (वज्र) तन्तुओं (सूत्र में आश्रित) है (अतएव उसमें समवायसम्बन्ध से युक्त है)। जो पदार्थ जिससे अभिन्न नहीं होता है, वह उसका धर्म नहीं होता यथा गो, अश्व का (अर्थात् गाय, घोड़े से भिन्न होने के कारण उसका धर्म नहीं होता)। पट (वस्त्र) तन्तुओं का धर्म है, अतएव पट उससे अर्थान्तर (भिन्न) नहीं है। (यह साध्याभाव में हेत्वभाव रूप अवीत अनुमान में व्यतिरेक दृष्टान्त है)। कार्य (पट) और कारण (तन्तु) की अभिन्नता में उपादान– उपादेय भाव भी हेतु है। जो भी दो पदार्थ एक दूसरे से भिन्न होते हैं, उनमें उपादानोपदेयभाव (कार्यकारणभाव) नहीं होता है, जैसा कि घट और पट में देखा जाता है। तन्तु और पट में उपादान–उपनादेयभाव है, अतः वे भिन्न

पदार्थ नहीं हैं। कार्य (वस्त्र) और कारण (तन्तु) में परस्पर 'संयोग का अभाव' और अप्राप्ति (विभाग) का अभाव होने से भी दोनों में भेद नहीं है एक पदार्थ के दूसरे से भिन्न होने पर परस्पर में संयोग (अप्राप्तिपूर्वक प्राप्ति) सम्बन्ध देखा जाता है, जैसे कुण्ड और बदरीफल में। उसी प्रकार भेद होने पर अप्राप्ति (किसी भी समय सम्बन्धहीनता) होती है। जैसा कि हिमालय और विन्ध्यपर्वत रूप दो अत्यन्त पृथक् पदार्थों में देखी जाती है। कार्य और कारण में संयोग और अप्राप्ति (= विभाग) दोनों का ही अभाव है। अतः कार्य (पट) और कारण (तन्तु) अर्थान्तर (परस्पर पृथक) नहीं है।

तन्तुओं से पट अभिन्न है। कार्य और कारण में अभेद–सिद्ध करने वाले ये हेतु अतीत (व्यतिरेकी, व्यतिरेकव्याप्तिमूलक) हैं (जितने दृष्टान्त दिये गये हैं, वे सब अतीत अनुमान के व्यतिरेक शन्त हैं)।

इस प्रकार अभेद सिद्ध होने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि तन्तु ही (आतान–वितान रूप) भवयव–सन्निवेश के द्वारा वस्त्र हो जाते हैं, तन्तु से भिन्न वस्त्र नामक कोई पदार्थ नहीं है। कार्य कारण अभेदवादी सांख्य की यही दृष्टि है।

कार्य कारण से इसलिये भी भिन्न नहीं है, कि कार्य सर्वदा कारणात्मक ही होता है। कारण से भिन्न कार्य नहीं होता। जब कारण सद्रूप है, तो उससे अभिन्न कार्य असत् कैसे हो सकता है ? पट तन्तुओं से भिन्न नहीं है; क्योंकि वह तन्तुओं का ही एक धर्म है। जो जिससे भिन्न होता है वह उसका धर्म नहीं होता, जैसे गाय अश्व से भिन्न है, तो वह उसका धर्म भी नहीं है। कारणभाव का अर्थ उपादानोपादेय भाव भी है। जिन वस्तुओं में उपादानोंपादेयभाव होता है वे एक–दूसरे से सर्वथा भिन्न नहीं होती।

वे एक यहाँ यह कहा जा सकता है कि जिन दो वस्तुओं में अर्थ–क्रिया भिन्न–भिन्न होती हैं; दूसरे से भिन्न हैं। तन्तु से कपड़ा सीने का काम लिया जाता है तथा पट से आच्छादन का। घड़े से जल ले आया जाता है, जो मिट्टी से कदापि सम्भव नहीं। ऐसी स्थिति में दोनों को अभिन्न कहना कहां तक उपयुक्त है? इसका उत्तर यह है, कि अर्थ–क्रिया की व्यवस्था वस्तु के भिन्न होने का कारण नहीं है। एक ही अग्नि के दाहक, पाचक और प्रकाशक होने से वह अनेक नहीं हो जाता। इसके विपरीत अनेक भृत्य मिलकर पालकी ढोने का एक काम करते हैं उससे वे सब अभिन्न नहीं हो सकते। जहाँ तक तन्तुओं का सम्बन्ध है अकेले वह आच्छादन नहीं कर सकते, पर मिलकर वही आच्छादन करने लगते हैं। इस उपर्युक्त युक्ति से यही सिद्ध होता है, कि कार्य कारण व्यापार के पूर्व भी विद्यमान रहता है। उसका कार्य के रूप में आविर्भाव हुआ करता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के आधार पर पञ्चमहाभूत से लेकर महत् तक के सभी स्थूल सूक्ष्म तत्त्व अपने कारणों में तिरोहित होते हुये अन्त में तीनों गुणों में विलीन हो बने रहते हैं जिनकी साम्यावस्था का ही नाम मूलप्रकृति, अव्यक्त या प्रधान है। सत्कार्यवाद के सिद्धान्त की यही कृ तार्थता है–

सदेव कार्यमुत्पत्तेः पूर्व कारकरूपकम्।
आविर्भाव तिरोभावौ जन्मनाशावुदीरितौ।।

कार्यरूप वस्तु में जो क्रियाबुद्धिव्यपदेश (यह उत्पन्न है– ऐसी प्रतीति का व्यवहार), सम्बन्ध–बुद्धि व्यपदेश (तन्तु में पट होता है– ऐसा आधार– आधेय–सम्बन्ध की प्रतीति का व्यवहार) और अर्थ–क्रिया–भेद (प्रयोजन निर्वाहकता का भेद, यथा– पट से किसी का आवरण किया जाता है, तन्तु से नहीं होते हैं वे भी कारण से कार्य का ऐकान्तिक (निश्चितरूप) भेद सिद्ध नहीं करते क्योंकि अभिन्न होने पर भी (कार्य और कारण की अभिन्नता मानने पर भी) विशेष धर्मों के कभी आविर्भाव (कारण से प्रकट होना) और कभी तिरोभाव (कारण में अप्रकट होना) से इन क्रियाबुद्धि–व्यपदेश आदि हेतुओं का अविरोध ही होता है (अर्थात् वे हेतु कार्य–करण के भिन्नत्व के साधक नहीं होते)। कोई–कोई पाँच हेतु मानते हैं–क्रियाभेद, निरोधभेद, बुद्धिभेद, और अर्थक्रियाभेद। व्यपदेशभेद जिस प्रकार कछु के अङ्ग उसके शरीर में प्रविष्ट हो जाने पर तिरोहित हो जाते हैं और बाहरा निःसृत होने पर प्रकट

हो जाते है, न कि कूर्म के अङ्ग कछुये से उत्पन्न (अर्थात् पहले वे नहीं थे और बाद में उत्पन्न हुये) और उसमें विनट (ध्वंसप्राप्त) होते हैं, उसी प्रकार मिट्टी या सोने से घट, मुकुट आदि कार्य निःसृत (प्रकाशित) होने पर 'ये उत्पन्न हुये ऐसा कहा जाता है एवं उसी मिट्टी तथा सोने में मिल जाने पर 'ये विनष्ट हुये' ऐसा कहा जाता है, न कि असत् (कारण में अविद्यमान घट, मुकुट आदि) की उत्पत्ति होती है। जैसा कि भगवान् कृष्ण द्वैपायन ने (गीता में) कहा है– न तो असत् (अविद्यमान) का सत्त्व कभी होता है और सत् (विधेयमान) का कभी अभाव होता है।

जिस प्रकार कछुआ (कछुआ का देह) अपने सिकुड़ने वाले तथा फैलने वाले अंगों से भित्र कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार घट, मुकुट आदि भी मिट्टी, सोने आदि से भित्र नहीं है। इस प्रकार (कारण और कार्य दोनों के एक होने पर) इन तन्तुओं में यह पट निर्मित हुआ है– यह व्यवहार (भेदपूर्वक प्रयोग) उसी प्रकार संगत होता है, जिस प्रकार की तिलक नामक वृक्षों के वन के विषय में यह व्यवहार कि श्इन वन में ये तिलक के वृक्ष हैं (अभेद में भेद की विवक्षा कर आधाराधेय भाव का प्रयोग)।

संदर्भ स्रोतः–

1. नासदुत्पादो वृशृङ्गवता । – सां०सू० 1/114
2. जयमंगला : शंकराचार्य, सम्पा0 हरदत्त शर्मा, कलकत्ता ओरियन्टल सीरीज, नं. 1926
3. तत्त्ववैशारदी : वाचस्पति मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वारणसी, प्रथम संस्करण, 1935
4. ईशावास्योपनिषद् : सम्पादक एम. हिरयन्ना, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1943
5. गौड़पादभाष्य : श्रीहर्ष, बालानन्द स्वामी, विश्वनाथ प्रेस, वाराणसी, 1940 प्रमि संस्करण।

*****